P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-1* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

राजस्थान के पूर्वी भाग में प्रचलित जनजातीय लोक गायन शैलियाँ

अनीता मीणा
शोध छात्रा,
संगीत विभाग,
राजकीय कला कन्या
महाविद्यालय,
कोटा विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान, भारत

रौशन भारती
सह आचार्य, संगीत विभाग
राजकीय कला कन्या
महाविद्यालय,
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
राजस्थान, भारत

सारांश

आदिवासियों का जीवन अनेक कलाओं से युक्त है उनकी संगीतकला (गायन, वादन, नृत्य) प्रशंसनीय है और उनका अपना मौखिक लोक साहित्य है। प्रत्येक आदिम जनजाति का अपना विशेष तथा परम्परागत लोक संगीत होता है जो सामाजिक संक्रमण के कारण प्रभावित होता है।

20वीं सदी में जो विमर्श की परम्परा आरम्भ हुई उसी के कारण इसे ग्राम्य और अभिजात्य वर्गों में बाँट दिया गया, जबकि भारतीय परम्परा में समग्रता ही कला और लोक दोनों की पहचान है।

लोक समाजों का रूप बदल रहा है, उसमें बड़ी तेजी से तकनीक, भाषा आदि का प्रवेश हुआ है लेकिन इसके बाद भी लोक में परम्परा उसकी प्रेरणा और इसी से सम्बद्ध लोक संगीत का रूप प्रभावों को ग्रहण करते हुए भी पारम्परिक रूप में जीवन्त रहते हैं।

मुख्य शब्द : हैला ख्याल, रसिया, पद, ढाँचा, उच्छांटा, सुड्डा, कन्हैया, मांगणियार, माँड, लंगा, तालबंदी।

प्रस्तावना

राजस्थान के पूर्वी भाग में जनजाति (मीणा) का जनसंख्या की दृष्टि से बाहुल्य देखा जाता है। जिनका अपना अलग इतिहास रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से मीणा जनजाति प्राचीन जनजातियों में से एक है जिसने वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक अनेक उतार–चढ़ाव देखे हैं। इनका अस्तित्व अनेक बार बना है और अनेक बार मिटा भी है।

प्राचीनकाल से ही यह जनजाति आर्यों, क्षत्रियों, मुस्लिमों, तथा राजपूतों से अनवरत संघर्ष करती रही है। पूर्व के कालों में यह जनजाति शासक वर्गों में से थी जिसके कई प्रमाण भी प्राप्त होते है परन्तु मध्यकाल के आते–आते, वक्त के थपेड़ो ने इन्हें पहाड़ों, जंगलों में धकेल दिया और अब इनकी अपनी अलग संस्कृति है। प्रकृति की गोद में पलने वाली यह जनजाति स्वयं को धरती की सन्तान मानती रही है।

जीवन की साँसों में प्रकृति की उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, निर्मलता, विश्वास–अंधविश्वास और भावों–अभावों की अनुगूँज इनकी संस्कृति में देखी जा सकती है। इनकी संस्कृति का अवलोकन इनके लोकसंगीत के माध्यम से किया जा सकता है जिनकी अपनी विशिष्टताऐं होती है।

मीणा जनजाति में संगीत कूट–कूट कर भरा हुआ है परन्तु आज भी इनका लोकसंगीत सभ्य समाज से अछूता सा प्रतीत होता है। लोकगीतों का संसार लोक–हृदय है। रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने लोकगीत के स्वरूप को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि –

"लोकगीत प्राणवान है, मधुर है, नैसर्गिक है और इसमें हृदय की गति को बिलोडित करने की शक्ति है। ये गीत असंख्य नारियों के हृदय की झनकार है, कामना की शब्दमूर्ति है और भावनाओं के रेखाचित्र है।"

सम्पूर्ण राजस्थान की लोकगायन शैलियों को मुख्यतः निम्न भागों में वर्गीकृत किया जाता है –

1. माँड गायिकी
2. मांगणियार गायिकी
3. लंगा गायिकी
4. तालबंदी गायिकी

उपरोक्त वर्गीकरण राजस्थान की धरातलीय स्थिति के कारण किया गया है क्योंकि यहाँ का अधिकतम क्षेत्रफल मरूस्थलीय है तथा पूर्वी भाग पहाड़ों,

नदियों आदि से परिपूर्ण है। इसी कारण पूर्वी भाग की लोक–गायिकी तालबंदी गायन शैली में सम्मिलित की जाती है।

पूर्वी राजस्थान की प्रमुख जनजातियों में अपना स्थान रखने वाली मीणा जनजाति की जनसंख्या मुख्यतः अलवर, जयपुर, करौली, उदयपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, कोटा, बूंदी, अजमेर, दौसा, भरतपुर आदि जिलों में अधिकतम देखी जाती है। परन्तु इन सभी जिलों में निवास करने वाली इस जनजाति की संस्कृति में भी कई विभिन्नताएँ देखी जा सकती है।

अकेले केवल सवाई माधोपुर जिले में जनजाति (मीणा) में तालबंदी गायनशैली के अन्तर्गत निम्नलिखित गायनशैलियाँ प्रचलन में देखी जा सकती है –

1. हैला ख्याल
2. रसिया
3. पद
4. ढाँचा
5. उच्छांटा
6. सुड्डा
7. कन्हैया

सामूहिकता जनजाति की विशिष्टता रही है और इनकी इसी पहचान के कारण इनके लोकसंगीत की विभिन्न शैलियों में स्पष्टता दिखाई पड़ती है।

हैला ख्याल

प्रारम्भ में इसके कलाकार हैला जाति के होते थे अतः इसको "हैला ख्याल" के नाम से जाना गया परन्तु कई मत इसकी मुख्य विशेषता स्थनीय भाषा के शब्द 'हेला देना' अर्थात् आवाज लगाना, जब लम्बी टेर में आवाज दी जाती है। इसी कारण से कालान्तर में इसका नाम "हैला ख्याल" पड़ा।

सम्पूर्ण राजस्थान में निम्न ख्याल प्रचलित देखे जाते है –

जयपुरी ख्याल
कुचामनी ख्याल
तुर्रा–कलंगी ख्याल
अलीबक्शी ख्याल
शेखावटी/चिड़ावा ख्याल
ढप्पाली ख्याल
किशनगढ़ी ख्याल
हाथरसी ख्याल
हैला ख्याल

रसिया

"रसिया" लोकगीतों का सम्बन्ध होली के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों से होता है। जो अलवर, भरतपुर (बृज क्षेत्र) में किए जाने वाले 'बम नृत्य' के साथ गाए जाते है। जिनमें श्री कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख किया जाता है।"

राजस्थान मे प्रमुख रूप से ये रसिया लोकगीत गुर्जर और मीणा जनजाति में प्रचलित देखे जाते है जिनका गायन स्त्रियों और पुरूषों दोनों के द्वारा किया जाता है। सामान्यतः मांगलिक आयोजनों के समय इनका गायन करते देखा जा सकता है।

मीणा जनजाति के रसिया लोकगीतों की मुख्य विशेषता रही है कि इन गीतों में रास/रसिया जैसे प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग अवश्य किया जाता है जो इनके रसिया लोकगीतों की पहचान के रूप में परिलक्षित होते हैं।

पद

मीणा जनजाति के द्वारा पद गायन का उद्देश्य धार्मिक संस्कारों से आमजन का परिचय कराना और जीवन में आत्मसात् कर शिक्षा ग्रहण करने हेतु किया जाता है। मुख्यधारा के सवर्ण समाज के गीतों को अपनी भाषा और लय के साथ अपनाया गया और इसी से तैयार हुए है जनजातीय लोकगीत – "पद"। ये पद लोकगायन वास्तव में उस दौरान चले सुधार आन्दोलन है जो आदिवासियों का धर्मान्तरण था।

ढाँचा

स्थानीय भाषा या जनजातीय लोक व्यवहार में प्रयुक्त इस आँचलिक शब्द का सामान्य अर्थ है – किसी वस्तु का कच्चा स्वरूप। प्रारम्भिक समय से ही साधारण से साधारण बात को संगीत के माध्यम से कहने की विशिष्ट कला जनजाति (मीणा) के लोगों में देखने को मिलती है।

ढाँचा लोकगीतों के द्वारा छोटे–छोटे टुकड़ों में तुरंत अपनी बात संगीत के माध्यम से कहने का ढंग इस जनजातीय लोक संस्कृति की ओर यकायक आकर्षित करता है। जीवन के सम्पूर्ण पक्षों से सम्बन्धित विषयों का गायन इन गीतों में दिखाई देता है।

उच्छांटा

'ऊँछटना' स्थानीय ढूँढाडी भाषा का एक आंचलिक शब्द है जिसके दो अर्थ निकल कर आते है – एक छँटे हुए तथा दूसरा ऊछल कर। अर्थात् वे गीत जो समाज के द्वारा विशिष्ट श्रेणी में छांट दिए गए हों यानि अलग/भिन्न कर दिए गए हो तथा ऊछल कर (प्रसन्नता पूर्वक/आनन्द पूर्ण भाव) गाए जाते है, वे 'उच्छांटा' लोकगीत होते हैं। इन गीतों में जनजाति की अश्लीलता या असभ्यता का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है।

जनजातीय सभ्यता, संस्कृति वर्तमान के सभ्य समाज से भिन्न रही है और यही कारण है कि जो इस सभ्यसमाज में स्त्री–पुरूषों के लिए उचित नहीं समझा जाता वे ही जनजातीय गुणों के रूप में परिलक्षित होते दिखाई देते है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् या इनके संस्कृतिकरण के बाद इन लोकगीतों पर आम सभा या गाँवों में ऊँची आवाज में गाने पर पाबन्दी लगा दी गई थी जिसके अनेक कारण माने गए जिनमें प्रमुख कारण तथाकथित रूप से सभ्य समाज में अश्लील माना गया।

सुड्डा

जनजाति के लोगों की अपनी संस्कृति रही है। सभ्य समाज से अलग इनकी विशिष्ट सभ्यता रही है परन्तु अन्य लोगों के सम्पर्क में आने के कारण कालान्तर में उनके कुछ नियमों, रूढ़ियों आदि को अपनाने के कारण इनकी संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ा और जो दुष्परिणाम होने लगे उनकी व्यथा इन लोकगीतों के माध्यम से कहने की कोशिश करते हुए देखी जा सकती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक 'सुड्डा' लोकगीतों का गायन स्वतंत्र रूप से किया जाता था परन्तु बाद में स्त्रियों और पुरूषों के 'सुड्डा' गायन में परिवर्तन कर स्त्रियों पर कई प्रकार के नियम लागू कर दिए गए। हालांकि वर्तमान में स्त्री व पुरूष दोनों ही इन लोकगीतों का गायन करते देखे जा सकते हैं।

कन्हैया

प्रारम्भ में इन लोकगीतों के माध्यम से भगवान कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित कथाओं का इस गायन के द्वारा बखान किया जाता था परन्तु धीरे–धीरे अन्य धार्मिक कथाओं को भी इन गीतों में सम्मिलित किया जाने लगा।

अस्सी के दशक तक ये लोकनाट्यों के श्रेणी में सम्मिलित किए जाते रहे है परन्तु वर्तमान में इनका स्वरूप, गायनशैली में अत्यधिक परिवर्तन हो चुके हैं।

लोक संगीत का प्राण तत्व 'रस' है। नीरस जीवन को सरस बनाने, श्रम की थकान से मुक्ति पाने, जिन्दगी की हताशा को उल्लास में परिवर्तित करने के लिए ही लोकसंगीत प्रस्फुटित हुआ है।

अध्ययन का उद्देश्य

राजस्थान के जनजातीय लोकसंगीत में प्रायः रसों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है परन्तु 'श्रृंगार रस' की इनमें प्रधानता देखी जा सकती है। लोकजीवन से अपनी, लोक कवि की कल्पना, प्रकृति और अपने परिवेश से जो बिम्ब या रूप प्रस्तुत होते हैं वे सजीव, मार्मिक और आत्मिक लगते हैं।

प्रदेश के पूर्वी भाग में निवास करने वाली जनजाति (मीणा) स्वभावतः श्रमप्रिय तथा लड़ाकू प्रवृति की मानी जाती रही है और इसी कारण इनके जीवन में 'वीर रस' का भी कोई अभाव नहीं है। वीर रस के साथ–साथ 'करूण रस', 'वात्सल्य रस' तथा 'भक्ति रस' की झलक भी इनके लोकसंगीत में दिखाई दे जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन का सीधा अभिप्राय पूर्वी भाग में निवास करने वाली जनजाति (मीणा) में रचे–बसे लोकसंगीत की विभिन्न गायन शैलियों की जानकारी एकत्रित कर उनकी वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत करना है।

जनजातीय लोकगीत, लोक परम्परा के जीवन की पूँजी रहे है इनमें जनमानस के विविध लोकचित्र प्रस्तुत होते हैं। हास्य, रूदन, उल्लास, विषाद, करूण, श्रृंगार, भक्ति, वात्सल्य की भावनाओं का मार्मिक चित्रण अर्थात् लोक जीवन के प्रत्येक पक्ष की अभिव्यक्ति इनके लोकगीतों में देखने को मिलती है।

साहित्यावलोकन

प्रस्तुत अध्ययन हेतु जनजाति (मीणा) बहुल क्षेत्रों में स्वयं जाकर लोकगायन शैलियों की वास्तविक स्थिति की जानकारी जनजाति के लोकगायकों से सम्पर्क कर एकत्रित की गई है।

लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने 'राजस्थानी लोकगीत' में राजस्थान के लोकगीतों की विवेचना की है वो स्पष्ट रूप से लोकगीतों की यथास्थिति प्रस्तुत करती है।

डॉ. विद्या चौहान ने लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में स्थानीय संस्कृति का परिचय करवाने वाले लोकगीतों का स्पष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया है।

उपरोक्त लेखों/प्रलेखों आदि के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों/पत्र–पत्रिकाओं आदि के माध्यम से विभिन्न गायन शैलियों की जानकारियाँ एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

लोकसंगीत से सम्बन्धित पूर्व मे भी अनेक शोधकार्य किए जा चुके है किन्तु ऐसे विषयों पर अध्ययन करने में अत्यन्त कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसे क्षेत्रों में अध्ययन कर सटीक जानकारी प्राप्त करना एक बड़ी उपलब्धि भी होती है।

प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से जनजातीय समुदाय की सांगीतिक रूचि और संस्कृति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा, एन.एम., "राजस्थान – प्रमुख लोकनाट्य", पृ.– 99*
2. *जैन, कान्ति, "राजस्थान में संगीत, लोकनृत्य एवं लोकनाट्य", पृ.– 158*
3. *चौहान, डॉ. विद्या, "लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि", पृ.– 40*
4. *द्विवेदी, डॉ. हजारी प्रसाद, "जनपद" पृ – 65*
5. *डॉ. सत्येन्द्र, "ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन", पृ.– 7*
6. *त्रिपाठी, रामनरेश, "कविता कौमुद्री" (ग्राम गीतों का परिचय), पृ.– 1–2*
7. *चूंडावत, लक्ष्मी कुमारी, "राजस्थानी लोकगीत" पृ – 2*